ISSN : 2320-7604
Listed in UGC Care journal
October, 21, Part 1, Serial.No. 143
RNI NO. : DELHIN/2008/27588

त्रैमासिक

बहुरि नहिं आवना

संयुक्तांक-19
जनवरी 2022 - जून, 2022
मूल्य : 20 रुपए

आजीवक महासंघ ट्रस्ट द्वारा निर्गत

संस्कृति, धर्म, दर्शन और साहित्य

Scanned with CamScanner

वर्ष : 14
संयुक्तांक : 19
अंक : जनवरी, 2022 - जून, 2022
संस्थाओं के लिए प्रति कापी : 100 रुपए
वार्षिक सदस्यता शुल्क : 500 रुपए
आजीवन सदस्यता : 2500 रुपए

संपादकीय पता

जे-5, यमुना अपार्टमेंट,
होली चौक, देवली,
नई दिल्ली-110080
मोबाइल : 09868701556
Email: bahurinahiawana14@gmail.com
Website-www.bahurinahiawana.in

Advertisement Rate

Full Page–Rs. 20,000/-
Half Page–Rs. 10,000/-
Qtr. Page–Rs. 5,000/-
Back Cover –Rs. 40,000/-
(four colour)
Inside Front –Rs.35,000/-
(four colour)
Inside Back –Rs.. 35,000/-
(four colour)

Mechanical Data

Overall Size 27.5 cms x 21.5 cms
Full Pages Print Area 24 cms x 18 cms
Half Page 12 cms x 18 cms or
24 cms x 9 cms
Qtr Page12 cms x 9 cms

प्रधान संपादक

प्रो. श्यौराज सिंह 'बेचैन'

संपादक

प्रो. दिनेश राम

सहायक संपादक

डॉ. अनिरुद्ध कुमार सुधांशु
डॉ. सुनीता देवी

भाषा सहयोग

डॉ. हेमंत कुमार हिमांशु
डॉ. राजकुमार राजन

कानूनी सलाहकार

एड. सतपाल विर्दी
एड. संदीप दहिया

संपादकीय सलाहकार एवं विषय विशेषज्ञ

डॉ. वी. पी. सिंह, प्रो. राजेन्द्र बड़गूजर, बलवीर माधोपुरी, प्रो. फूलबदन, प्रो. नामदेव, प्रो. सुजीत कुमार, डॉ. चन्देश्वर, डॉ. दीनानाथ, डॉ. मोहन चावड़ा, विजय सौदायी, डॉ. यशवंत वीरोदय, डॉ. सुरेश कुमार, डॉ. मनोज दहिया

अप्रवासी समाज, संस्कृति और साहित्य के विशेषज्ञ

ओमप्रकाश वाघा, नरेन्द्र खेड़ा, राम बाबू गौतम, डॉ. गुलशन नजरोवना जुगुरोवा, डॉ. बयात रहमातोव, डॉ. सिराजुद्दीन नूरमातोव

* पत्रिका पूरी तरह अवैतनिक और अव्यावसायिक है।
* पत्रिका से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।
* अंक में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिए लिखित अनुमति अनिवार्य है।
* 'बहुरि नहिं आवना' के सारे भुगतान मनीआर्डर/चैक/बैंक ड्राफ्ट 'बहुरि नहिं आवना' के नाम से स्वीकृत किये जायेंगे।
* स्वामी, संपादक, प्रकाशक एवं मुद्रक प्रो. दिनेश राम की ओर से भारत ग्राफिक्स, सी-83, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, नई दिल्ली-20 द्वारा मुद्रित एवं एफ-345, लाडो सराय, नई दिल्ली- 30 से प्रकाशित।
* 'बहुरि नहिं आवना' में प्रकाशित लेखों में आये विचार लेखकों के अपने हैं जिन से संपादकीय सहमति अनिवार्य नहीं।

Scanned with CamScanner

अनुक्रम

संपादकीय : 'द चमार' : शताब्दी पार करती एक किताब	*–प्रो. श्यौराज सिंह 'बेचैन'*	3
हिन्दी दलित कविता में अम्बेडकर के विचारों का प्रभाव	*–डॉ. अजय कुमार*	6
हिन्दी दलित कविता में संवैधानिक मूल्यों की अनुगूँज	*–अनुज कुमार*	9
सलाम : दलित-चेतना की पैरवी करती कहानियाँ	*–डॉ. तरुण*	13
डॉ रजत रानी मीनू की कहानियों में दलित-विमर्श	*–डॉ. मोहम्मद इसराइल*	18
वर्तमान परिप्रेक्ष्य में दलित साहित्य की उपादेयता	*–डॉ. कृपा शंकर*	22
हिन्दी सिनेमा में दलित-विमर्श	*–संजय कुमार सिंह*	26
महान वैज्ञानिक मेघनाद साहा का जाति के विरुद्ध संघर्ष	*–प्रेम कुमार*	29
धर्मांतरण के अंतर्द्वन्द, संघर्ष और 'सनातन' (शरण कुमार लिंबाले के उपन्यास 'सनातन' पर कुछ वैचारिक बिंदु)	*–डॉ. टेकचन्द*	33
विरल अनुभवों की सूक्ष्म ज्यामिति का काव्य संसार	*–डॉ. मुकेश कुमार मिरोठा*	36
समकालीनता और हिन्दी साहित्य	*–डॉ. ज्ञानेन्द्र कुमार संतोष*	40
समकालीन पत्र-पत्रिकाओं में आदिवासी संस्कृति एवं विमर्श	*–डॉ. जयसिंह मीना* *–डॉ. केदार प्रसाद मीना*	43
राष्ट्रवाद का करिश्मा और हिन्दी सिनेमा	*–डॉ. कुमार भास्कर*	47
जीवनीपरक होता सिनेमा का रंग	*–अनुपम कुमार*	51
नई कविता का पुनर्मूल्यांकन	*–प्रो. राम चरण मीना*	55
हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त बाजार	*–ममता देवी*	58
विमर्श : सन्दर्भ हानूश	*–डॉ. पूनम सिंह*	61
प्रयोगवादी काव्य और अज्ञेय	*–रश्मि मिश्रा*	65
उन्नीसवीं शताब्दी की स्त्री-शिक्षा व्यवस्था और सावित्रीबाई फुले	*–रानी कुमारी*	68
सबाल्टर्न आत्मकथायें-आत्मसंघर्ष का वृत्तांत	*–डॉ. राजकुमार राजन*	72
'प्रार्थना में पहाड़' उपन्यास में अभिव्यक्त पर्यावरणीय चिंतन	*–ओमवती*	76
प्राचीन भारतीय समाज का मुख्य अवदान	*–डॉ. भारती कुमारी*	78
मध्यकालीन भक्त संतों की बायोपिक फिल्म में लोकप्रिय जीवन-आख्यान और युग-बोध	*–समरेन्द्र कुमार*	81
भरत, ब्रेख्त और स्तानिस्लावस्की के सिद्धान्त : अभिनय संदर्भ	*–डॉ. मधु कौशिक*	87
राजस्थानी लोक संस्कृति का स्वरूप	*–डॉ. केदार प्रसाद मीना* *–डॉ. जयसिंह मीना*	91
अस्मिता के लिए संघर्षशील आदिवासी	*–डॉ. राम किशोर यादव*	95
कबीर और संगीत	*–रोहित कुमार*	100
ब्रजकालीन समाज में राजनैतिक परिस्थितियाँ	*–डॉ. राम रतन प्रसाद*	103
दुख का अधिकार कहानी का पुनर्पाठ	*–डॉ. सीमा रानी*	106
कविताएं	*–डॉ. रजत रानी 'मीनू'*	110

Scanned with CamScanner

अस्मिता के लिए संघर्षशील आदिवासी

–डॉ. राम किशोर यादव

हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श को आगे बढ़ाने का काम हरिराम मीणा, लक्ष्मण गायकवाड़, महादेव टोप्पो, रामदयाल मुंडा, निर्मला पुत्तुल, कुमार सुरेश, रमणिका गुप्ता आदि ने किया है। इन सभी लेखकों और चिंतकों ने आदिवासियों की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक समस्याओं को उजागर किया है। उनके जीवन में व्याप्त संकट पर प्रमुखता से विचार किया है। आदिवासी साहित्य जीवनवादी साहित्य है। इसमें लक्षित विद्रोह अपनी अस्मिता और हकों के लिए है। आदिवासी समाज की मुक्ति के लिए संघर्षरत आदिवासी वीर पुरुषों का राजनैतिक सामाजिक विद्रोह इनकी मूल प्रेरणा है। यह साहित्य केवल शब्दों में रचा गया भाव नहीं है बल्कि शोषित, उपेक्षित, बहिष्कृत वर्ग की आवाज उठाता है। यह परिवर्तनकामी और संकल्पबद्ध साहित्य है। यह साहित्य क्रांतिकारी है। इसमें प्रतिरोध का भाव विद्यमान है। इसमें विरोध का माद्दा है। इसमें अस्वीकार का साहस है। इसमें स्वीकार की दलीलें हैं, इसमें अनुभव की पूंजी है। इसमें भोगे हुए यथार्थ की प्रामाणिकता है।आदिवासी जंगल में रहते हैं। प्रकृति के पुजारी हैं। जल, जंगल और जमीन के लिए हमेशा संघर्ष करते रहते हैं। वे गहन मानवीय चेतना से युक्त प्राणी है। आदिवासी जीवन के संपूर्ण स्थिति को आदिवासी विमर्श में उभारा गया है। आदिवासी साहित्यकारों ने उनकी जीवन की पड़ताल की है। एक ऐसा विषय है जिसमें जनजातीय जीवन को खंगालने का प्रयास हुआ है। कहा भी जाता है 'राख ही जानता है जलने का स्वाद।' आदिवासी ही अपनी अनुभूति को, अपनी व्यथा को, अपनी पीड़ा को सही परिप्रेक्ष्य में वर्णित कर सकता है। एक ऐसा वर्ग जिसे सभी ने सताया है। प्राचीन समय से अपने अलग जंगल में रहने वाले ये लोग किस प्रकार की यातना का शिकार हैं।

आजादी से पूर्व और आजादी के बाद उनके जीवन स्तर में कोई सुधार नहीं हुआ है। उन्हें न तो कोई विकास का लाभ मिला है न ही मानवीय सुविधाएं। वे निरन्तर प्रकृति की शरण में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनकी ओर किसकी दृष्टि है। कौन सोचता है कि वे भी मानव हैं? उनकी व्यथा कथा को ही आधार बनाकर आदिवासी साहित्य का सृजन हो रहा है। आज भी वह भारतीय सभ्य समाज का हिस्सा नहीं हैं। जो हमेशा प्रकृति के ऊपर निर्भर है, उनके पास न खेती

Scanned with CamScanner

के लिए जमीन है न कोई व्यापार है। उनका जीवन कैसे चलता है। इसकी समीक्षा करनेवाला कोई नहीं है। आदिवासियों के संदर्भ में भिन्न-भिन्न मत हैं। डॉ. विजयशंकर उपाध्याय के शब्दों में, "वन प्रदेशों तथा पर्वतीय प्रदेशों में निवास करने वाले अनेक मानव समुदाय, मानव सभ्यता के विकास क्रम में विभिन्न कारणोंवश पृथक रह गए, पफलतः विकास की रोशनी वहां नहीं पहुंच पायी। इन दुर्गम और पृथक क्षेत्रों में निवास करनेवाले समुदाय सभ्यता के विकास की दृष्टि से अभी तक प्रारंभिक सोपानों पर ही है। इनमें से पृथक समुदाय का अपना नाम है जिससे इन्हें अभिहित किया जा सकता है किन्तु ऐतिहासिक विडम्बना ने इन समुदायों को आदिवासी या जनजाति की संज्ञा दी है।"[1]

आदिवासी देश के मूल निवासी हैं। वे आदिम मानव हैं। वे समूहों में रहते हैं। एक साथ रहकर अपने जीवन का संघर्ष करते हैं। उनके इतिहास, उनका भौगोलिक आधार उनका सामाजिक स्वरूप क्या है, इस पर विभिन्न विद्वानों ने विचार किया है। भारत की आबादी का लगभग 8.08 प्रतिशत आबादी आदिवासियों की है। इन्हें भारत के संविधान के अनुच्छेद 342 के अधीन निर्दिष्ट किया गया है। "दरअसल यह एक प्रशासनिक शब्द है जिससे किसी विशेष क्षेत्रीयता का संकेत मिलता है। इसका उद्देश्य किसी जन समुदाय की विशिष्टता वैश्विक स्थिति से ज्यादा उसके सामाजिक आर्थिक स्तर का परिचय देता है। किसी समुदाय को जनजाति के तौर पर परिभाषित करते समय उसके भौगोलिक अलगाव, उसकी विशिष्ट संस्कृति, आदिम विशेषताओं (यथा लिखित) आम सामाजिक समुदायों से घुलने-मिलने में संकोच और आर्थिक पिछड़ेपन (यथा लिखित) जैसी बातों का ध्यान रखा जाता है।"[2]

भारत के विभिन्न प्रान्तों में आदिवासी समाज के लोग निवास करते हैं। उनकी क्षेत्रीय स्थिति के अनुसार, संघर्ष का स्वरूप भी भिन्न है। भारत के विस्तृत भूभाग में ये निवास करते हैं। "भारत में एशिया की विभिन्न दिशाओं तथा विभिन्न क्षेत्रों में प्रवेश करनेवाले ये लोग विभिन्न प्रजातियों के भी हैं। अभी तक भारत की आदिम जनजातियों की निश्चित प्रजातीय समूहों में व्यवस्थति करना संभव नहीं हो सका। यद्यपि पर्याप्त पुरातात्विक तथा जीवाश्म संबंधी आंकड़ों के अभाव में भारत के अनेक आदिवासी समूहों के उद्भव तथा अनुवर्ती इतिहास के विषय में हमारा ज्ञान अस्पष्ट है, फिर भी जहां तक ऐतिहासिक काल का संबंध है उनके गौरव तथा पतन की कहानी को प्रस्तुत किया जा सकता है। ऐतिहासिक आंकड़े अवश्य ही इनके जीवन पर कुछ प्रकाश डालते हैं और हम समस्या की अटकली योजनाओं में लटके रहने के बजाय विश्वसनीय सूत्रों को चुनना प्रारंभ कर सकते हैं।"[3]

आदिवासी समाज पर दृष्टि डालते हैं तो पाते हैं कि इसका भौगोलिक विस्तार है। भारत के उत्तर से लेकर दक्षिण तक पूर्व से लेकर पश्चिम तक इनका फैलाव है। उन्हें भिन्न प्राकृतिक परिवेश में जीवनयापन करना पड़ता है। इनकी भिन्न-भिन्न प्रजातियां हैं। भारत में लगभग 360 प्रमुख जनजातियां निवास करती हैं। विभिन्न भौगोलिक परिवेश में रहने के कारण रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज में भिन्नता देखने को मिलती है। जनजातीय समाज की कुल संख्या 8.35 प्रतिशत है। इन संख्या का अधिकांश हिस्सा मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, झारखंड, महाराष्ट्र, राजस्थान, आन्ध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल और नार्थ ईस्ट में रहती हैं। करीब-करीब 10 प्रतिशत जनजातियां पूर्वोत्तर भारत में रहती हैं। भारत में लगभग 100 जनजातीय भाषाएं प्रयोग में हैं। इन आदिवासी लोगों में भील, संथाल, उरांव, भुटिया, मुंडा, गोंड, खोंड तथा मीणा जनजातियां प्रमुख हैं। जो सबसे छोटी जनजातियां हैं उनकी संख्या कम है। जैसे ग्रेट अंडमानीज, सेंटनोलीज, आगेए, जवां तथा शोमेन।

भारत में अफ्रीका के बाद सबसे ज्यादा आदिवासी समुदाय के लोग रहते हैं। भारत के मूल निवासी होने के कारण ही इन्हें आदिवासी कहा जाता है। मूलतः ये इंडिजनस पीपल्स हैं। ये समाज जंगलों में, पर्वतों के नजदीक कंदाराओं में रहने वाले लोग हैं। इनकी विविधता में विविध संघर्षमय यात्रा छिपे हैं। ये लोग मूलभूत संसाधनों के अभाव में भी भारतीय संस्कृति की विशेषताओं को समाहित कर रखे हैं। ये लोग लोभ की प्रवृत्ति से दूर हैं। ये लोग सदियों से सताये गये हैं। ये लोग जंगलों में रहकर कंद-मूल खाकर, पोखरों, झरनों का पानी पीकर अपना जीवनयापन करते हैं। ये लोग अपनी पूरी प्रवृति के अनुरूप आत्मसम्मान से रहते हुए अपनी भाषा, संस्कृति और जीवन शैली को जीवन्त बनाये हुए हैं। आदिवासी समुदाय की स्थिति चिंताजनक है। उनकी दशा को सुधारने का कोई विशेष प्रबंध नहीं किया गया है। संयुक्त राष्ट्र संघ (यू.एन.) ने इस विषय पर अपना सरोकार व्यक्त किया है। भारत में भी मूल निवासियों की आबादी

Scanned with CamScanner

की सुरक्षा हेतु अंतर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ (आई.एल.ओ.) के 107वें समझौते पर हस्ताक्षर किये और अपना समर्थन दिया। मूल निवासियों पर अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए भारत सरकार ने बताया कि "अनुसूचित जनजातियों के लोग मूल निवासी नहीं हैं और भारत की समस्त जनता देश की मूल निवासी ही है। यह भारत सरकार के लिए विवादास्पद विषय रहा है।"4 मूल निवासियों के संदर्भ में जो शब्द प्रयुक्त हुआ है वह 'स्वनिर्णय' है। यू.एन. डब्ल्यू.जी.आई.वी. ने स्पष्टीकरण दिया है, "इस सबके बावजूद कि भारत मूल निवासियों के अधिकारों के समर्थन में चलाई जा रही परियोजनाओं में आई.एल.ओ. के साथ काम करता रहा है।"5

भारत ने निरन्तर चल रहे परियोजनाओं को गति देकर उनके जीवन स्तर को सुधारने का प्रयास किया है। वहां की स्थानीय कमजोरियों, दुर्गम इलाकों की स्थिति के कारण समुचित विकास संभव नहीं हो पाया है। ये लम्बे समय से शोषण के शिकार हैं। ऐसी स्थिति में रहकर उनके भीतर आक्रोश का भाव पैदा होता है। जैसे-जैसे लोग शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। अपने अधिकारों के लिए सचेत हो रहे हैं। अपनी पहचान को बनाये रखना चाहते हैं। वह स्वतंत्र होकर अपना निर्णय देते हैं। जब वह सम्पूर्ण स्थिति पर विचार करता है तो पाता है कि उसके हाथ तो अभाव में ही हमेशा रहा है। उसके साथ तो छल किया गया है। उन्हें वंचित और शोषित बनाकर रखा गया है। उनके भीतर इस अत्याचार से मुक्ति का भाव पैदा होने लगा है। उन्होंने सभ्य जातियों के अत्याचार के विरुद्ध बगावत का रास्ता अपनाया। आदिवासी साहित्य में उनकी वेदना, पीड़ा और आक्रोश का भाव विद्यमान है। वे अपनी अस्मिता के लिए संघर्षशील हैं। वे अपने स्वत्व और अस्मिता के लिए हर प्रकार से संघर्ष कर रहे हैं। इसमें आदिवासी स्त्री और पुरुष दोनों शामिल हैं। शोषण और विस्थापन का शिकार उपेक्षित समुदाय, व्यवस्था के मारे हुए लंबे समय से अपनी अस्मिता की तलाश में हैं। वे अपने अधिकार को प्राप्त करना चाहते हैं। अब और इस प्रकार की जिन्दगी नहीं जीना चाहते हैं। तीर और कमान, धनुष और बाण लिये अपने स्वत्व का बोध होने पर अपनी अस्मिता के लिए कृतसंकल्प हैं। इनके भीतर सांस्कृतिक विशिष्टता समाहित है। जीवन के बुनियादी अधिकारों के लिए वे संगठित हो रहे हैं। आज इस समुदाय के लेखकगण कलम की शक्ति से अपने अनुभवों, दुःख, पीड़ा, वेदना और जीवन को एक नया स्वरूप प्रदान कर रहे हैं। उन लोगों तक ज्ञान की रोशनी पहुंच गई है। जंगल में निवास करने वाले ये लोग अब सचेत और जागरुक हो गये हैं। आज का आदिवासी लेखन अपने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक रूपों को उद्घाटित कर समूची व्यवस्था से प्रश्न कर रहा है। उनसे अपने अधिकार मांग रहा है। वह भी कह रहा है कि हम लोग कब तक ऐसे बने रहेंगे। इसके लिए कौन दोषी है। इसके लिए आपने क्या किया? आपका कितना सहयोग है? हमारे ऊपर निरन्तर आपका शिकंजा कसता गया है। हम तो जंगल की लकड़ी काटकर भी अब बेच नहीं सकते हैं। हमारा जीवन कैसे चलेगा? हमारी पीढ़ी का क्या होगा? क्या हम ही दर-दर की ठोकरें खाने के लिए बने हैं? इसका उत्तर कौन देगा? जीवन संघर्ष में वे अकेले हैं। आदिवासी समाज की सांस्कृतिक पहचान को लेकर कई विद्वानों ने अपने मत प्रकट किये हैं। प्रभु पी. के अनुसार, "अपने क्षेत्र से उनके खास जुड़ाव और उनके समुदाय का प्रकृति से अंतरंग संबंध उनके लिए अपने स्रोतों का प्रबंध यह नहीं है कि अलग-अलग परिवारों के बीच भूमि का बंटवारा कर दिया जाये।... आदिवासी का क्षेत्र उसकी सामूहिक चेतना का विस्तार होता है। जिसका अपना सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक महत्व है। ... समुदाय की सभी आवश्यकताओं को समुदाय के भीतर ही पूरा करना और अपनी जरूरतों के लिए बाजार पर कम से कम निर्भर रहना समुदाय का अपने क्षेत्र पर जितना राजनीतिक प्रभुत्व होगा उसी अनुपात में ये विशेषताएं उस समुदाय में दृष्टिगोचर हो सकते हैं।"6

आदिवासी जंगल पर निर्भर हैं। जंगल से ही लकड़ी काटना, पत्ते तोड़कर अपना जीवनयापन करते हैं। आदिवासी लोगों को जंगलों से भी वंचित किया जा रहा है। औद्योगिकरण और शहरीकरण के कारण जंगलों पर सरकार का प्रभुत्व बढ़ता गया। फलस्वरूप आदिवासी मजदूर बनने पर मजबूर हो गये। कई प्रांतों में वन उत्पादनों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। उन पर वन विभाग नियम लागू हो गया। अब वे बाजार में जंगल से प्राप्त लकड़ी और पत्तों को बेच नहीं सकते हैं। वहां न्यूनतम मजदूरी अधिनियमों तक पालन नहीं किया जाता है। गुजरात और राजस्थान में इसमें छूट दी है। इस प्रकार उच्चतम न्यायालय ने इसे संविधान का उल्लंघन बताया है। यह जंगल किसका है? किसने सदियों से इसका संरक्षण किया है? यहां कौन से लोग रहते हैं?

Scanned with CamScanner

इनकी स्थिति क्या है? इस पर किसी ने विचार नहीं किया है। एम. शर्मा 'हूज फारेरट्स? ओनर्स विक्रम वर्करस' की रपट के अनुसार, ''कुल मिलाकर विकास कार्यों के चलते आदिवासियों को अपनी उपजीविका के साधन स्रोतों से हाथ धोना पड़ा है। विकास कार्यों के कारण कुल 1 करोड़ 85 लाख लोगों अर्थात् भारत की कुल जनसंख्या के 2 प्रतिशत से अधिक हिस्से को अपनी बस्तियां छोड़नी पड़ी हैं। विकास परियोजनाओं के लिए विस्थापित लोगों में लगभग 50 प्रतिशत आदिवासी हैं। यद्यपि उनकी आबादी भारत की कुल जनसंख्या का 8.08 प्रतिशत ही है। इतने विशाल परिमाण में विस्थापन के बावजूद सरकार के पास कोई समान पुनर्स्थापन और पुनर्वास नीति नहीं है।''7 आदिवासी की समस्याओं को आदिवासी साहित्य में स्थान दिया गया है। जल, जंगल और जमीन, पर्यावरण मानवीय सभ्यता, मानवीय अस्तित्व, भाषा और संस्कृति तथा भारतीय विरासत को बचाने में इस समुदाय की महत्ती भूमिका है। आदिवासी विमर्श अस्तित्व और अस्मिता का विमर्श है। एक ऐसा विमर्श जिससे इस समुदाय की परंपरा, रुढ़ियां, संस्कृति, अन्याय, अत्याचार, अपमान, शोषण सभी कुछ बयान हो रहा है। लोककला, संगीत, नृत्य, संस्कृति, भाषा, बोली, आदि विभिन्न धरातलें आदिवासी लेखन द्वारा परिलक्षित हो रहा है।

आदिवासी समाज में आज कई नई प्रथाएं विद्यमान हैं। लोकगीत, लोकनृत्य और लोकनाट्य का अद्भुत रूप उनके यहां मिलता है। उन्हें अभी तक पूर्णतः शब्दबद्ध नहीं किया गया है। वे आज भी मौलिम रूपों में आदिवासी जीवन का अभिन्न अंग हैं। आदिवासी साहित्य को सही परिप्रेक्ष्य में देखने की जरूरत है। आदिवासी समुदाय को अपने मूल से उखाड़ने का प्रयास अनैतिक है। यह अमानवीय है। उनकी इस हालत में सुधार हेतु जल, जंगल और जमीन पर स्वायत्ता जरूरी है। रमणिका गुप्ता के अनुसार, ''आज आदिवासियों को विस्थापित कर उनके जल, जंगल तथा जमीन को तो सरकार हड़प ही रही है, साथ उन्हें बुनियादी अधिकारों से भी वंचित कर रही है। और गैर-आदिवासी लोगों की घुसपैठ के कारण उनकी भाषा भी नष्ट हो रही है। आज अपने ही घर में वे बेगाना हैं आदिवासी। वह अल्पसंख्यक हो गया है।''8

आज मानसिकता में बदलाव करने की जरूरत है। इसके लिए समग्र नीति बनाने की आवश्यकता है। साहित्य में आदिवासी जीवन का वर्णन कम ही किया गया है। किन्हीं छुटपुट लोगों ने ही इसका उल्लेख किया है। सरस्वती पत्रिका (1900) में महावीर प्रसाद द्विवेदी का संकेत है, ''क्षितिज जनों एक और भारत को देखने का मौका मिला जिसकी चर्चा उनके साहित्य में और राजनैतिक लेखन में कम होती है।''9

आदिवासी जीवन को लेकर लेखन करनेवालों में करुणा, व्यथा, जल, जंगल, जमीन है, केचुआ है, मिट्टी है, पक्षी हैं, पेड़-पौधे हैं, सूर्य-चन्द्रमा है, पानी-बिजली, झरने, पोखर हैं। आदिवासी स्त्रियों की आहें और कराहें हैं। उनके भीतर विद्यमान अंधविश्वास की परंपराएं हैं। जिन्हें तोड़ने के लिए संदेश दिया जा रहा है। जीवन की सम्पूर्ण का चित्रण ही आदिवासी साहित्य का प्राण है। आदिवासी समाज को जागृत करने की जिम्मेदारी साहित्यकारों पर है। आदिवासी समाज में कुछ ऐसी रुढ़ियां हैं जो आदिवासी स्त्री के विकास में बाधक हैं। आदिवासी स्त्री जब चाहे दूसरा साथी चुनने के लिए स्वतंत्र है। आदिवासी समाज इसके लिए मान्यता देता है। उनका बहिष्कार नहीं करता है। स्वतंत्रता के बावजूद भी वह दोहरी मार झेलती हैं। एक तरफ मुख्य समाज द्वारा शोषित हैं तो दूसरी ओर स्त्री होने की वजह से अपने समाज में शोषित हैं। आदिवासी विमर्श को मुख्य धारा में लाने में निर्मला पुत्तुल, महादेव टोप्पो, रामदयाल मुंडा, हरिराम मीणा तथा वाहरु सोनवर्ण ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। हरिराम मीणा की कविताओं में सीधे-साधे आदिवासी जीवन की सहजता को उभारा गया है। उनकी यात्रा-वृतांत 'साइबर सिटी से नंगे आदिवासी तक' और 'जंगल जंगल जलियांवाला' में आदिवासी जीवन का कारुणिक एवं ऐतिहासिक पहलू की झलक मिलती है। तेजिन्दर द्वारा रचित 'काला पादरी' उरांव आदिवासियों की पृष्ठभूमि पर केन्द्रित है। इसमें धर्म-परिवर्तन से उपजी स्थिति से मार्मिक चित्रण मिलता है। राकेश कुमार सिंह का 'पठार पर कोहरा' में शोषण, अन्याय और अत्याचार की स्थिति का वर्णन है। हताशा और निराशा से युक्त एक आदिवासी युवती की संघर्ष गाथा है। 'दुनिया की सबसे हसीन औरत' नामक लेख में संजीव ने आदिवासी स्त्री की कर्मठता का चित्रण किया है। संजीव के 'जंगल जहां शुरू होता है' में थारू जाति की व्यवस्था का चित्रण है। मैत्रेयी पुष्पा ने 'अलमा कबूतरी' में कबूतरी जनजाति की अस्मिता के कुचले जाने की कथा कही है। मोहन शर्मा ने 'मीणा घाटी' नामक उपन्यास में भील-मीणा जनजाति के लोगों का चित्रण किया है।

Scanned with CamScanner

निर्मला पुतुल के अनुसार, "आदिवासी जीवन अपनी धड़कनों, जीवन्ताओं और प्रमाणिकता के साथ विद्यमान है।"10 आदिवासी स्त्री की अस्मिता और स्वाभिमान को मुख्य धारा के समाज का नायक नष्ट कर रहा है। सत्ता, शोषण, बर्बरता सबकुछ आदिवासी अस्मिता को नष्ट करने का औजार मात्र है। इस प्रकार अस्मिता के लिए संघर्षशील आदिवासी अपने भविष्य के लिए कृतसंकल्प हैं। इनमें अदम्य साहस और जिजीविषा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. विद्याभूषण, झारखंड : समाज, संस्कृति और विकास, पृ. 5
2. सारिणी (सं.), इंडिजनस पीपल्स इन इंडिया, सारिणी ऑकेजनल पेपर्स, क्रम 1, भुवनेश्वर, सी.इ.डी.इ.सी. 1997, पृ. 3
3. हसनैन, नदीम, जनजातीय भारत, पृ. 34
4. इंटरनेशनल कन्वेशन ऑफ सिविल एंड पॉलिटिकल राइटस, 1966, पृ. 214
5. इंडिजनस एंड ट्राईबल पीपल्स, जिनेवा, आई.एल.ओ. जुलाई, 1994, पृ. 28-29, 32-33
6. विजोय सी.आर. एवं प्रभु पी., आदिवासी : सिचुएशनल स्टेट्स, 3 इंटर नेशनल अलाएंस ऑफ इंडिजनस टाइब्ल पीपुल ऑफ द ट्रापिकल फारेस्ट, नागपुर, भारत 3-8 मार्च, 1997, पृ. 7
7. शर्मा, एम., हूज फारेस्ट्स? ओनर्स विक्रम वर्कस' लेबर फाइल भाग-3, क्रम 5 व 6 मई जून, 1997, पृ. 16
8. गुप्ता रमणिका, आदिवासी स्वर और नई शताब्दी, खंड 2, पृ. 15
9. शर्मा रामविलास, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, पृ. 175
10. पुतुल, निर्मला, नगाड़े की तरह बजते हैं सब, पृ. 30

राम किशोर यादव
श्री वेंकटेश्वर कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

Scanned with CamScanner